

भारतीय परम्परा में कला और काव्य की सर्जना-प्रक्रिया

राधावल्लभ त्रिपाठी



आर्य

सामान्यतः माना जाता है कि कला या कविता की रचना भले ही कलाकार या कवि करता हो, पर उसकी रचना-प्रक्रिया तथा रचना के गुणावगुण पर विचार ज्ञानी, पण्डित या समीक्षक करता है। तथापि कलासृष्टि या साहित्य-सर्जना के समय या उसके पश्चात् स्वयं कलाकार या कवि भी यह विमर्श करते आये हैं कि मेरी यह कलाकृति या कविता कैसी रची गयी।

कहा जाता है कि भारतीय काव्य-चिंतन में कला-सर्जना की प्रक्रिया पर गहरा विचार नहीं किया गया। हमारी आचार्य-परम्परा की शब्दावली व अभिव्यक्ति-शैली आधुनिक विचारकों की भाषा व शैली से भिन्न है, इसलिए कदाचित् इस तरह की भ्रांतियाँ होती रही हैं। कुछ पश्चिमी विद्वान यह भी कहते रहे हैं कि भारतीयों का (आशय है कि संस्कृत के कवियों और आचार्यों का) कोई सौंदर्यशास्त्र नहीं है। इस प्रवाद के पुरस्कर्ता मैक्समूलर जैसे मनीषी विद्वान रहे हैं। वस्तुस्थिति यह है कि संस्कृत भाषा में सौंदर्य के जितने पर्याय हैं, कदाचित् संसार की किसी अन्य भाषा में न होंगे। शिल्प, कला, रूप, चारुता, विचित्रता, वक्रता, लालित्य, आभिजात्य, लावण्य, सौकुमार्य, मार्दव, रेखा, सौष्ठव, रमणीयता, शोभा, सौभाग्य, बंध, आस्वाद, चर्वणा, भूषण, वर्तना, भोग, भावना आदि के तारतमिक विवेक पर भी परम्परा में विचार मिलता है। पूर्णता या अलंकार, आनंद और रस सौंदर्य के ये विविध पर्याय सौंदर्यशास्त्र की बहुस्तरीय तात्त्विक अवधारणाओं को ही प्रकट करते हैं। यद्यपि सौंदर्य शब्द आधुनिक भारतीय भाषाओं में संस्कृत से ही लिया गया है, और उसका प्रयोग भी संस्कृत के आचार्यों ने अपने कला और काव्य के विमर्श में किया है, पर सौंदर्य विषयक एक व्यापक और अधिक सार्थक पदावली के बीच यह शब्द अपेक्षाकृत उनके बीच कम प्रयुक्त रहा है। अतः सौंदर्य तथा सौंदर्यशास्त्र के स्थान पर अन्य शब्दों का प्रयोग विमर्श की सम्पन्नता का ही द्योतक माना जाना चाहिए, न कि सौंदर्यशास्त्र के अभाव का। उदाहरणार्थ कालिदास का कहना था कि जो सुंदर है, वह सदा सुंदर ही दिखेगा, अतएव उन्होंने सुंदर शब्द का प्रयोग इस प्रसंग में न करके मधुर शब्द का प्रयोग किया— 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' (जिनके चेहरे मधुर हैं, उनके लिए कौन सी चीज़ सजावट नहीं बन जाती।) हो सकता है कि प्राचीन आचार्यों ने सौंदर्य की विविध कोटियाँ या व्याप्तियाँ बताने की दृष्टि से सौंदर्य शब्द के स्थान पर चारुता, रमणीयता, लावण्य, लालित्य जैसे शब्दों को अधिक प्रयोग किया हो। इन अवधारणाओं को ले कर किया गया सौंदर्यशास्त्रीय विमर्श कला-सर्जना का प्रक्रिया से भी अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। सुंदर की रचना सौंदर्य के तत्त्व-चिंतन को स्फूर्त करती है।

वेद मात्र धर्मग्रंथ नहीं, संसार की सबसे पुरानी कविता के भी उदाहरण हैं। विश्व के लिखित वाङ्मय में ऋग्वेद सबसे पुराना ग्रंथ है। स्वभावतः काव्य तथा कला की सर्जना-प्रक्रिया पर पहला विमर्श ऋग्वेद में मिलता है। वैदिक विश्व-बोध इस जगत को परमात्मा की रची कविता के रूप में देखता है। इस संसार के लिए वैदिक कवि कहते हैं—'देखो इस परमात्मा की कविता को, जो न मरती है, न बुढ़ाती है।'¹ मसीही या सामी परम्पराओं के विश्व-बोध में सृष्टि का उद्भव पाप के विचार से माना जाता रहा है। इसके बरअक्स भारतीय विश्व-बोध इस सृष्टि को पवित्र संकल्प और सौंदर्य से जन्मी मानता है। इस दृष्टि से युरोप के कला-सर्जना या काव्य-सर्जना के विचार से हमारा कला-सर्जना और काव्य सर्जना का विचार अलग हो जाता है। कवि या कलाकार अपनी रचना में परमात्मा की रची इस कविता की अनुकृति करते हैं। कवि या कलाकार के सर्जनात्मक व्यापार के लिए अनुकृति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वैदिक ऋषि ऐतरेय महीदास ने अपने ऐतरेय ब्राह्मण में किया है।

एक ओर तो वैदिक ऋषि मानते हैं कि कवि-कर्म चेतना के गहरे स्तरों से उन्मेषित होता है, तथा इसमें आकस्मिकता व अप्रत्याशित सम्भावनाएँ रहती हैं। दूसरी ओर वे रचना को सँवारने और उसके श्रमसाध्य होने की बात भी कहते हैं। वे कहते हैं कि हमारी स्तुतियाँ हमारे मानस से ऐसे ही फूट पड़ी

¹ देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति (अथर्ववेद).

हैं, जैसे आकाश से वर्षा होती है।² या उन्हें लगता है कि ये स्तुतियाँ उनके चित्त से झर रही हैं, जैसे पहाड़ से नदियाँ बहती हैं। पर काव्य-रचना की प्रक्रिया का स्थूल स्तर भी है, जिसमें शब्द उसी तरह विन्यस्त होते हैं, जिस तरह कपड़े में धागे या रथ में उसके अवयव के संश्लिष्ट होते हैं। अपने मंत्रों के लिए ऋषि कहते हैं कि वे नवीन हैं, पहले नहीं देखे गये, पर उसी तरह रचे गये हैं, जैसे जुलाहा वस्त्र बुनता है या बढ़ई रथ तैयार करता है।³

वैदिक ऋषियों के इन कथनों में परस्पर विरोध नहीं देखा जाना चाहिए। सर्जना-प्रक्रिया का एक स्तर मन की गुहाओं में छिपा हुआ रहस्यमय तथा अज्ञात होता है। एक स्तर पर उसका प्रकाश विदित व प्रकट रहता है। वैदिक सर्जना की शक्ति को अग्नि या वाक् कहते हैं। वे कहते हैं कि काव्य, मन के संकल्प और स्तुतियाँ एक अग्नि से जन्म लेती हैं।⁴ वाक् के चार स्तर वे बताते हैं। इन में से तीन तो (मन की) गुफा में छिपे हुए हैं, चौथा स्तर वह है, जो कहे जाते, सुने जाते शब्द के रूप में ढलता है।⁵ इस तरह इन चार स्तरों में से पहले तीन को आभ्यन्तर व अंतिम चौथे को बाह्य कह सकते हैं। बाद के विचारकों ने वाणी के इन चार स्तरों को परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के नाम से परिभाषित किया तथा काव्यशास्त्री भट्टतोत ने इनके आभ्यन्तर वर्ग को ही दर्शन कहा और बाह्य को वर्णन।⁶ वाक् अपने सूक्ष्मतम रूप में चेतना में समाहित है। इसी से समस्त संसार जन्म लेता है।⁷ काव्यरचना या कला-सर्जना की प्रक्रिया में चेतना के ऐतरेय तीन तरफ इंगित करते हैं— सरस्वती, इला तथा भारती। वाक् राष्ट्री या ईश्वरी है।⁸ वाक् त्वष्टा है। इस सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करने के कारण इसे त्वष्टा कहा जाता है।⁹

ऐतरेय वाणी को समुद्र के समान बताते हैं, जिस तरह समुद्र कभी क्षीण नहीं होता, उसी तरह वाक् भी कभी क्षीण नहीं होती।¹⁰

वेदों में वाक् को सर्वव्यापिनी सर्जना-शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।¹¹ उपनिषदों में वाक् (वाणी) के विषय में कहा है— यह समस्त पृथ्वी वाक् का शरीर है। जितना इस जगत का विस्तार है, उतना वाक् का। यहाँ जो कुछ भी जाना जाता है, सब वाक् का रूप है, वाक् ही नाना पदार्थों के रूप में सारे जगत में व्याप्त है।¹²

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वाक् की अवधारणा इसी परम्परा से आयी है।

² इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्वा स्तुतिः.

अभ्राह्मिष्ठिरिवाजनि। (ऋग्वेद 07.094.01).

³ वस्त्रेण भद्रा सुकृता वसूयू.

रथं न धीराः स्वपा अतक्ष्म॥ (ऋग्वेद, 5.9.15).

⁴ त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्वदुक्त्वा जायन्ते राध्यानि.

त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्याधिये दापुषे मर्त्याय॥ (ऋग्वेद 4.11.3).

⁵ चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः.

गुहा त्रीण्यङ्गिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोषुवदद् गर्भन्तः।

तां द्योतमानां स्वर्था मनीषां ऋतस्य पदे कवयो निपाति। (ऋग्वेद, 10.117.2)

⁶ नानुषिः कविरित्युक्त ऋषिश्च किल दर्शनात्।

विचित्रभावधर्माशितस्वप्रख्या च दर्शनम्।

स तत्त्वदर्शनादेव शास्त्रेषु पठितः कविः।

दर्शनाद् वर्णानाच्चाथ लोके रूढा कविश्रुतिः।

तथाहि दर्शने स्वच्छे नित्येप्यादिकवेमुनेः।

नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना।

⁷ वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञ।

⁸ वाग्वै राष्ट्री- (ऐतरेयब्राह्मण), 1.4, पृ. 121.

⁹ वाग्वै त्वष्टा। वाग्धीदं सर्वं ताष्टीव॥ (ऐतरेयब्राह्मण- 4.6, पृ. 228).

¹⁰ वाग्वै समुद्रः। न वै वाक् क्षीयते। न समुद्रः क्षीयते। (ऐतरेयब्राह्मण 23.1, भाग-2, पृ. 227).

¹¹ द्रष्टव्य - ऋग्वेद 10.71.

¹² बृहदारण्यक उपनिषद् 1.58.11.

[2]

वैदिक तथा आगमिक परम्परा में वाक् सर्जना की आद्य शक्ति के रूप में वाक् को ले कर किया गया विमर्श एक ओर तो दर्शनशास्त्रों में सृष्टि-प्रक्रिया के विवेचन में प्रतिफलित होता है, तो कलाशास्त्र और काव्यशास्त्र में वह कला-सर्जना या काव्य-रचना की प्रक्रिया के विवेचन का भी वह मूल स्रोत हो जाता है।

भर्तृहरि ने अपने *व्याकरणदर्शन* में माना कि यह संसार वाक् या शब्दब्रह्म का विवर्त है। दूसरी ओर *व्याकरणदर्शन* में प्रतिपादित परा वाक् को परम चैतन्य का पर्याय मानते हुए शैव दर्शन में इसे शिव रूपिणी कहा गया।¹³ यही वाक् स्वातन्त्र्यरूपिणी प्रतिभा भी मानी गयी।¹⁴

उत्पलदेव ने इसे परमशिव की शक्ति से समाकारिता बताई। अभिनवगुप्त सोमानंद तथा उत्पलदेव के चिंतन को कला-सर्जन की प्रक्रिया की दृष्टि से आगे ले जाते हैं। सोमानंद ने तो भर्तृहरि का पश्यंती वाक् को ही परा के समकक्ष माना।¹⁵

चेतना की अपने निर्मल अविकारी रूप में स्थिति, फिर इस स्थिति में स्पंद या क्षोभ होना रचना की प्राथमिक शर्त है। काश्मीर के शैव दार्शनिकों ने इसके प्रत्यय को जागतिक सृष्टि तथा कला-सृष्टि दोनों के लिए विनियोजित किया है। रचना करते समय चेतना स्वतंत्र होती है, स्वातंत्र्य उसका मुख्य लक्षण ही होता है।¹⁶

शैव दर्शन में सृष्टिकर्ता को शिव तथा उसकी रचने की सामर्थ्य को शक्ति कहा गया। ऐसी स्थिति में शिव या आत्मा की तुलना कलाकार से या कलाकार की तुलना शिव से की जाने लगी। प्रख्यात शैव दार्शनिक सोमानंद ने आत्मा को नर्तक बताते हुए रंगमंच का रूपक रचा।¹⁷ यह आत्मा सत्त्व या मन की एकाग्र दशा में स्थित हो कर अपने भीतर एक रंगमंच रचता है। सोमानंद के इस सूत्र की व्याख्या में अभिनवगुप्त के शिष्य क्षेमराज कहते हैं कि आत्मा परिस्पंदित होता हुआ विविध भूमिकाओं का विस्तार करता है। अभिनेता भी नाट्य में सत्त्व में स्थित हो कर ही भूमिका का विस्तार करता है।¹⁸

चित्त की समाहित या समाधि की स्थिति को प्रख्या भी कहा गया है। प्रख्या संवेदनात्मक हो तथा सर्जना के लिए प्रवृत्त कराए, तो यह स्थिति सत्त्व है।¹⁹

¹³ चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः ॥ (*ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका* 1.5.13)

¹⁴ भासा नाम च प्रतिभा महती सर्वगर्भिणी।
स्वस्वभावशिवैकात्मदेशिकात्मकचिन्मयी ॥
यस्यां हि भित्तिभूतायां मातृमेयात्मकं जगत।
प्रतिबिम्बतया भाँति नगरादिव दर्पणे ॥
स्वातन्त्र्यरूपा सा काचिच्छक्तिः परमेष्ठिनः।
तन्मयो भगवान् देवो गुरुर्गुरुमयी च सा ॥ (*महार्थमंजरी*, 105)

¹⁵ अथास्माकं ज्ञानशक्तियां सदाशिवरूपता।
वैयाकरणसाधूनां सा पश्यन्ती सा परा स्थितिः ॥
इत्याहुस्ते परं ब्रह्म यदनादि तथाक्षयम्।
तदक्षरं शब्दरूपं सा पश्यन्ती परा हि वाक् ॥ *शिवदृष्टि*, II.1-2

¹⁶ चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः ॥ (*ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका*, 1.5.13).

¹⁷ नर्तक आत्मा। रङ्गान्तरात्मा। प्रेक्षकाणीन्द्रियाणि। धीसत्त्वात् सत्त्वसिद्धिः। (सोमानन्द, *शिवसूत्र* 9-12).

¹⁸ नानाभूमिकाप्रपञ्चं स्वपरिस्पन्दलीलाया एव स्वभित्तौ प्रकाशयति। तेन सत्त्वस्य स्फुरत्तात्मनः आन्तरपरिस्पन्दस्य सिद्धिरभिव्यक्तिर्भवति। नाट्ये च सात्त्विकाभिनयसिद्धिर्बुद्धिकौशलादेव लभ्यते। (क्षेमराज, *शिवसूत्रविमर्शिनी*)

¹⁹ सदिति प्रख्यारूपं संवेदनम् तद् यत्रास्ति तत् सत्त्वं मनः। तस्येयमिति। (*अभिनवभारती*, भाग 1 : 20).

सात्त्विक भावों के अभिनय के लिए सत्त्व या चित्त की एकाग्रता अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक है, अतः इन भावों के अभिनय में सात्त्विक अभिनय की प्रधानता मानी गयी है।

वस्तुतः अभिनेता सात्त्विक अभिनय कर रहा है, इस बात का बोध प्रेक्षक को सात्त्विक भावों का अनुभव करके होता है, इसलिए शाङ्गदेव ने सात्त्विक अभिनय का लक्षण ही यह किया है— 'भावुक द्वारा सात्त्विक भावों से विभावित होने वाला अभिनय सात्त्विक अभिनय है।' ²⁰ टीकाकार कल्लिनाथ ने यहाँ भावुक का अर्थ नट तथा प्रेक्षक दोनों से लिया है। ²¹ परभावकरण: अङ्गवर्तना तथा आहार्य के अंतर्गत वेशभूषा आदि के द्वारा अनुकार्य की आकृति को इस प्रकार प्रकट करना परभावकरण है। इसके लिए भरत ने परकाय-प्रवेश का दृष्टांत दिया है। जिस प्रकार जीवन एक देह छोड़ कर दूसरी देह में प्रवेश करने पर दूसरी देह वाले प्राणी के समान चेष्टा आदि करता हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार वेष तथा वर्णों से आच्छादित अभिनेता भी अनुकार्य पात्र की चेष्टाओं को व्यक्त करने लगता है।

सत्त्व में अभिनेता की अवस्थिति के द्वारा ही परभावकरण या परकायप्रवेश की नाट्यप्रयोग में सिद्धि सम्भव है (आगे आहार्य अभिनय के अंतर्गत परभावकरण)। सत्त्व की स्थिति में अभिनेता अपने आत्म के प्रति सचेत रहता है। आधुनिक नाट्य निर्देशकों ने भी अभिनय के लिए अभिनेता का अपने आप के ऊपर एकाग्र होना महत्त्वपूर्ण माना है। रूस ने प्रख्यात रंग-निर्देशक स्तानिस्लाव्स्की कहते हैं— अभिनेता को इस तथ्य के प्रति सचेत और एकाग्र रहना चाहिए कि मैं हूँ, मेरा अस्तित्व है। यह एकाग्रता उसे पात्र की भावनाओं में प्रवेश कराती है। ²²

शैव दर्शन ने वाक् की परिणतियों या रचना की प्रक्रिया को स्पंद कहा। स्पंद चेतना की अंतर्मुख और बहिर्मुख यात्रा है। संकोच और प्रसार इसके दो छोर हैं, दोनों के बीच चेतना डोलती है। यह डोलते रहना स्पंद है।

अभिनवगुप्त ने *नाट्यशास्त्र* के सोलहवें अध्याय पर अपनी व्याख्या में लक्षणसिद्धांत का निरूपण करते हुए पहले आचार्यों के मत उद्धृत किये हैं, जो मानते हैं कि प्रतिभा के विविध स्पंद कविता के विविध स्तरों को जन्म देते हैं। प्रतिभा के पहले परिस्पंद से गुण, दूसरे से अलंकार तथा तीसरे से लक्षण कविता में जन्म लेते हैं। अभिनवगुप्त इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि कविता के सर्जनात्मक व्यापार को इस तरह खण्ड-खण्ड विभाजित नहीं किया जा सकता है, वह अंततः एक अखण्ड व्यापार (प्रक्रिया) होता है। ²³

चेतना की अपने निर्मल अविकारी रूप में स्थिति, फिर इस स्थिति में स्पंद या क्षोभ होना रचना की प्राथमिक शर्त है। काश्मीर के शैव दार्शनिकों ने इसके प्रत्यय को जागतिक सृष्टि तथा कला-सृष्टि दोनों के लिए विनियोजित किया है। रचना करते समय चेतना स्वतंत्र होती है, स्वातंत्र्य उसका मुख्य लक्षण ही होता है।

²⁰ सात्त्विक: सात्त्विकैर्भावैर्भावुकेन विभावः । (*संगीतरत्नाकर*. 7.22).

²¹ वही, भाग-4 : 8.

²² स्तानिस्लाव्स्की ऑन आर्ट : 44.

²³ वाच्यवाचकसौभाग्यलावण्यपरिपोषकः ।

व्यापारशाली वाक्यस्य विन्यासो बंध उच्यते ।। (व.जी. 1. 22)

सौभाग्य प्रतिभासंरम्भफलभूतं चेतनचमत्कारित्वलक्षणम्, लावण्यं सन्निवेशसौन्दर्यम्, तयोः पोषकः ।

दूसरी ओर वक्रोक्तिसिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य कुंतक काव्य में सौंदर्यात्मक रचना को वक्रोक्ति मानते हैं, तथा वक्रता या वक्रोक्ति के विन्यास को बंध भी कहते हैं। यह बंध प्रतिभा के संरम्भ या स्पंद से ही निर्मित होता है।

परम शिव का ही रूप प्रतिभा है। यह प्रतिभा अनभिव्यक्त दशा में सर्वत्र व्याप्त है। इसी का एक विशिष्ट और उद्भट रूप कवि-प्रतिभा है। उद्भट प्रतिभा में काव्य साहित्य के पदार्थ स्वतः स्फुरित होते रहते हैं, इसके पीछे संस्कार, पर्यवेक्षण और अनुशीलन की सुदीर्घ प्रक्रिया रहती है। इसी को पुराने आचार्यों ने शक्ति भी कहा है। शक्ति का स्वरूप बताते हुए रुद्रट कहते हैं कि जिस सुसमाहित मन में अभिधेय (कथ्य) का तरह तरह से स्फुरण होता है, वही शक्ति है, इसमें से सहज या अनायास कविता के शब्द प्रतिभात होते चले जाते हैं।²⁴

राजशेखर ने शक्ति और प्रतिभा को कविचेतना के दो अलग अलग पक्ष मान लिए हैं। शक्ति मूल है, प्रतिभा उसका कर्म है।²⁵ इन्हें अस्फूर्त या सोई हुई प्रतिभा और स्फूर्त या जागी हुई प्रतिभा भी कह सकते हैं। मन की ऐसी दशा जिसमें कविता के अनुरूप शब्दावली आभासित होती चली जाए, जागरित प्रतिभा कही जा सकती है। सामान्यतः प्रतिभा तो संसार के हर प्राणी में रहती ही है। पर किसी किसी की प्रतिभा ऐसी होती है, जो रचनात्मक स्फूर्ति ले सके। शैव दर्शन के आचार्यों ने इस स्फूर्ति को स्पंद या परिस्पंद कहा है। यह स्पंद निर्मल मन में ही हो सकता है। स्पंद या स्फूर्ति व्यक्ति की अपनी मानसिकता, उचित वातावरण, प्रशिक्षण, अभ्यास आदि से ही सम्भाव्य है। प्रतिभा, व्युत्पत्ति (जानकारी या ज्ञान) और अभ्यास— ये काव्य रचना के कारण या हेतु कहे गये हैं। मम्मट के अनुसार ये तीनों मिल कर एक हेतु हैं, क्यों कि इनमें से कोई एक कविता की रचना नहीं करा सकता।

प्रतिभा रचना के अंकुरण के लिए बीज है। पर यह बीज भी तभी अंकुरित होगा, जब इसे सही जमीन में डाला जाए, और इसमें खाद और पानी भी दिया जाए। व्युत्पत्ति अथवा संसार तथा शास्त्रों और पहले के काव्यों की जानकारी जमीन की तरह है, और अभ्यास रचना के अंकुर को सींचने का काम करता है। कुंतक कहते हैं कि रचना कवि के चित्त में ऐसी ही आती है, जैसे किसी को अनायास दुर्लभ मणि मिल जाए, पर यह मणि बिना तराशा हुआ होता है। अपनी विदग्धता या रसिकता से वह इसे तराश कर विन्यास देता है, इसे सुघटित बनाता है। यह काम व्युत्पत्ति (जानकारियाँ) और अभ्यास के जरिये हो सकता है।²⁶

व्युत्पत्ति और अभ्यास को काव्य-रचना की प्रक्रिया में हेतु मान लेने पर जिस समाज और संसार में कवि या कलाकार जन्म लेता है, उसकी भी भूमिका कला या काव्य की इस प्रक्रिया में रेखांकित हो जाती है। इस दृष्टि से काव्य या कला की रचना-प्रक्रिया में विनियुक्त होने वाले हेतु अथवा उपादान दो वर्गों में रखे जा सकते हैं— बाह्य और आभ्यंतर। कवि या कलाकार के आसपास की दुनिया और उससे मिलने वाली जानकारियाँ - बाह्य हेतु हैं। बाह्य होने से उनकी उपादेयता न्यून हो ऐसा नहीं है। रचनाकार की अपनी तैयारी— अंतर्गता तथा अपनी प्रतिभा को रचना में व्यक्त करने की प्रक्रिया आभ्यंतर हेतु से सम्बद्ध है। कला-सर्जना की प्रक्रिया पर विचार करने वाले आचार्यों ने बाह्य और आभ्यंतर दोनों प्रकार के हेतुओं तथा तज्जन्य प्रक्रियाओं पर विचार किया है।

²⁴ मनसि सुसमाधिनि विस्फुरणनेकधाऽभिधेयस्य ।

अक्लिष्टानि च पदानि विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः ॥ (रुद्रट, काव्यालंकार)

²⁵ तावुभावपि शक्तिमुद्भासयतः । सा केवलं हेतुः इति यायावरीयः । विप्रसृतिश्च सा प्रतिभाव्युत्पत्तिभ्याम् ।

शक्तिकर्तृकेहि प्रतिभाव्युत्पत्तिकर्मणो । शक्तस्य प्रतिभाति शक्तश्च व्युत्पद्यते ।

या शब्दग्राममर्थसार्थमलङ्कारतन्त्रमुक्तिमार्गमन्यदपि तथाविधमधिहृदयं प्रतिभासयति सा प्रतिभा ।

अप्रतिभस्य पदार्थसार्थः परोक्ष इव, प्रतिभावतः पुनरपश्यतोऽपि प्रत्यक्ष इव । (काव्यमीमांसा)

²⁶ कविचेतसि प्रथमं च प्रतिभाप्रतिभासमानमघटितपाषाणशकलकृपमणिप्रख्यमेव वस्तु

विदग्धकविचित्तवक्रवाक्योपाखण्डं शाणोल्लीढमणिमनोहरतया तद्विदाह्लादकारिकाव्यत्वमधिरोहति ।' (वक्रोक्तिजीवित, 1।7 की वृत्ति)

भरतमुनि कहते हैं कि नाट्य की रचना में तीन प्रमाण हैं— लोक, वेद (शास्त्र तथा विद्याएँ) तथा अध्यात्म (कलाकार या कवि की चेतना)।²⁷ तीनों की कला-सर्जना में भूमिका रहती है। तीनों ही कला-सर्जना में अनिवार्यतः अपनी अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। लोक सबसे स्थूल आधार है, शास्त्र उससे सूक्ष्म तथा अध्यात्म सूक्ष्मतम। ऊपर का सारा विमर्श अध्यात्म की दृष्टि से किया गया है। वामन (आठवीं शताब्दी) और राजशेखर (दसवीं शताब्दी) इन दो आचार्यों ने इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विचार किया है। वामन ने कहा कि काव्य के तीन अंग हैं— लोक, विद्या और प्रकीर्ण।²⁸ लोक या अपने आसपास के संसार का ज्ञान होना पहला अंग है। विद्याओं में कलाशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीति आदि विविध अनुशासन समाहित हो जाते हैं। कविता बनाने के अभ्यास, उसे लगातार साधना व प्रशिक्षण को वामन ने प्रकीर्ण में रखा है।²⁹

ईसा के पहले की सहस्राब्दी में ऐतरेय महीदास, भरतमुनि आदि ने कला-सर्जना की प्रक्रिया को ले कर विमर्श की जो दिशा बनाई, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त आदि आचार्यों ने ईसा के बाद की सहस्राब्दी में उसे विस्तार दिया। भर्तृहरि की परावाक् तथा शैव दर्शन की शक्ति यहाँ कवि-प्रतिभा के रूप में परिभाषित हुई। इस प्रतिभा में अनायास शब्द, पदावलियाँ और अर्थ कौंधते हैं, प्रतीत होते हैं, झलकते हैं और कविता का रूप लेते जाते हैं। कौंध व झलक के अनंतर उनके विन्यास की प्रक्रिया में कवि या रचनाकार की व्युत्पत्ति या ज्ञान तथा अभ्यास (रचना को बार बार माँजने) की भूमिका भी रहती है। अत्यंत स्पंदनशील या उदग्र रूप से जागरित प्रतिभा वाले रचनाकार के लिए लोकव्यवहार, सांसारिक ज्ञान, पाण्डित्य आदि की तथा रचना को बार बार संशोधित करने की आवश्यकता नहीं भी हो सकती है। उदग्र प्रतिभा वाले कवियों की रचना का पहला प्रारूप ही अंतिम प्रारूप होता है। पर सभी की प्रतिभा उदग्र नहीं होती। इसलिए दण्डी ने माना कि प्रतिभा तो नैसर्गिक होती है, पर गुरुजनों के विद्या का ग्रहण और लगातार रचना के लिए जुटे रहना (अमंद अभियोग)— ये तीनों मिल कर कविता की समृद्धि के कारण होते हैं।³⁰ प्रतिभा संस्कार है, जो जन्मजन्मांतर से स्रष्टा के भीतर बना हुआ है। इसे ईश्वरीय देन भी मान लिया गया। तब मनुष्य के प्रयास

प्रतिभा रचना के अंकुरण के लिए बीज है। पर यह बीज भी तभी अंकुरित होगा, जब इसे सही ज़मीन में डाला जाए, और इसमें खाद और पानी भी दिया जाए। ... कुंतक कहते हैं कि रचना कवि के चित्त में ऐसी ही आती है, जैसे किसी को अनायास दुर्लभ मणि मिल जाए, पर यह मणि बिना तराशा हुआ होता है। अपनी विदग्धता या रसिकता से वह इसे तराश कर विन्यास देता है, इसे सुघटित बनाता है। यह काम व्युत्पत्ति (जानकारियाँ) और अभ्यास के ज़रिये हो सकता है।

²⁷ लोको वेदस्तताऽध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् । नाट्यशास्त्र.

²⁸ लोको विद्या प्रकीर्णं च काव्याज्ञानि । (वामन, काव्यालंकारसूत्र, 1,3.1)

²⁹ लोकवृत्तं लोकः । शब्दस्मृत्यभिधानकोशच्छन्दोविचिंतिकलाकामशास्त्रदण्डनीतिपूर्वा विद्याः । शब्दस्मृतेः शब्दशुद्धिः । अभिधानकोशात्पदार्थनिश्चयः । छन्दोविचितेवृत्तसंशयच्छेदः । कलाशास्त्रेभ्यः कलातत्त्वस्य संवित् । कामशास्त्रतः कामोपचारस्य । दण्डनीतेर्नयापनययोः । इतिवृत्तकुटिलत्वं च ततः । लक्ष्यज्ञत्वमभियोगो वृद्धसेवावेक्षणं प्रतिभानमवधानं च प्रकीर्णम् । तत्र काव्यपरिचयो लक्ष्यज्ञत्वं, काव्यबन्धोद्यमोऽभियोगः । काव्योपदेशगुरुशुश्रूषणं वृद्धसेवा । पदाधानोद्धरणमवेक्षणं । कवित्वबीजं प्रतिभानम् । चित्तैकार्यमवधानम् । तद्देशकालाभ्याम् । विविक्तो देशः । रात्र्यामस्तुरीयः कालः । (काव्यालंकारसूत्र, 1,3.2-20)

³⁰ नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम्

अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसंपदः ॥ काव्यादर्श, 1.103 ॥

या कर्तृत्व की रचना के लिए क्या भूमिका हो सकती है? दण्डी कहते हैं कि किसी के पास प्रतिभा न भी हो, और वह वाणी की उपासना अर्थात् साहित्य की साधना करता रहे, तो सरस्वती उस पर कुछ न कुछ कृपा कर ही देती है।³¹

आनंदवर्धन वाक् के लिए सरस्वती शब्द का प्रयोग करते हैं। वे परिस्फुरित होती हुई या स्पंदनशील प्रतिभा के इस सरस्वती का कारण बताते हैं। स्पष्ट ही वाक् के जिन तीन स्तरों को वैदिक विचारकों ने चेतना के भीतर निगूढ़ कहा था, उनको यहाँ परिस्फुरित या स्फुटित होती प्रतिभा कहा गया है। कुंतक इसी को अम्लान प्रतिभा कहते हैं, जिसके कारण रचना में सौंदर्य और चमत्कार सहज उतरता जाता है।³² प्रतिभा की विशेषता आकस्मिक प्रत्यवभास (अचानक एक अलग दुनिया का एक चमक में सामने कौंध जाना) में है। इस प्रत्यवभास या कौंध के विविध स्तर कवि की रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से बताए गये हैं – परिच्छिन्न प्रत्यवभास (सीमित कौंध या झलक भर होना), संश्लिष्टार्थप्रत्यवभास (मुख्य वस्तु ही नहीं, उससे जुड़े पदार्थों का भी आभास होना), प्रशांतसर्वार्थप्रत्यवभास (समग्रता में एक संसार का सामने प्रकट होना)।

पर यदि प्रतिभा अम्लान नहीं है, तो रचना में उसके उद्भेद के क्रमिक स्तर हो सकते हैं। आनंदवर्धन एक ओर तो कहते हैं कि महाकवियों में यदि असाधारण प्रतिभा है तो उनकी सरस्वती (वाणी) सहज रूप से प्रवाहित होती रहती है। पर वे यह भी कहते हैं कि रचनाकार प्रयास कर के सही शब्द और सही अर्थ की प्रत्यभिज्ञा या पहचान करे। जागरित प्रतिभा सही शब्द और सही अर्थ को स्वतः चमका देती है। इसलिए पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य की रचना के अनुरूप शब्द और अर्थ की उपस्थिति को भी प्रतिभा कहा। पर प्रतिभा का प्रकाश मंद हो तो सही शब्द और सही अर्थ की सूझ अटक सकती है। फ्रेंच उपन्यासकार क्लॉद सिमो को 1985 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया गया। पुरस्कार प्राप्ति के समय अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा कि मेरे पास कहने को कुछ भी नहीं है, मेरी रचना में यदि कोई ऐतिहासिक, सामाजिक या दार्शनिक सत्य उजागर हुआ है, तो उसे उससे अलग करके नहीं कहा जा सकता।³³ नोबेल पुरस्कार पाने के कुछ वर्ष बाद क्लॉद सिमो को रूस में लेखक संघ के समक्ष व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया। व्याख्यान के पश्चात् उनसे किसी ने यह सवाल कर डाला कि एक लेखक के रूप में उनकी चुनौती और समस्या क्या है। उन्होंने कहा— लिखते समय मेरे सामने तीन ही समस्याएँ रहती हैं। पहली, वाक्य की शुरुआत कैसे करूँ, दूसरी, वाक्य को जारी कैसे रखूँ और तीसरी, वाक्य का समापन

³¹ न विद्यते यद्यपि पूर्ववासनागुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ॥1.104 ॥
तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती श्रमातुपास्या खलु कीर्ति ईप्सुभिः
कृशे कवित्वेऽपि जनाः कृतश्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्तु ईशते ॥1.105 ॥
तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रतिकविस्थिताः ॥1.101 ॥

³² अम्लानप्रतिभोद्भिन्नवशब्दार्थसुन्दरः ।
अयत्नविहितस्वल्पमनोहारिविभूषणः ।
भावस्वभावप्राधान्यन्यकृताहार्यकौशलः ।
रसादिपरमार्थज्ञानः संवादसुन्दरः ।
अविभावितसंस्थानरामणीयकरः ।
विधिवैदग्ध्यनिष्कृपन्ननिर्माणतिशयोपमः ॥
यत्किञ्चापि वैचित्र्यं तत्सर्वं प्रतिभोद्भवम् ।
सौकुमार्यपरिस्पन्दस्यन्दितत्र विराजते ।
सुकुमाराभिधः सोऽयं येन सत्कवयो गताः ।
मार्गोत्फुल्लकुसुमकाननेनेव षट्पदाः ॥ 1.25-29

³³ टोर फ्रेंजमेयर और स्ट्यूर ऐलेन (सं.), अंग्रेजी संस्करण (1993), फ्रॉम नोबेल लेक्चर्स, लिटरेचर 1981-1990, वर्ल्ड साइंटिफिक पब्लिशिंग, सिंगापुर.

कैसे करूँ। यद्यपि क्लॉद सिमो के इस वक्तव्य ने रूस की श्रोतामण्डली को हतप्रभ कर के रख दिया, पर वह कवि-कर्म के उस अनोखेपन और जटिलता का बयान है, जिसे ध्यान में रखते हुए ही आनन्दवर्धन ने कहा कि कवि यत्नपूर्वक अपने सही शब्द और सही अर्थ को पहचाने।

अभिनवगुप्त के समग्र साहित्य में काव्य की रचना या कला-सर्जना की प्रक्रिया को ले कर तत्त्वमीमांसीय, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, संरचनागत दृष्टियों से विशद विमर्श किया गया है। मनस्तत्त्व का विश्लेषण भारतीय विचारकों ने जैसा किया है— वह विश्व की चिंतन परम्पराओं में वह हमारी विशेष पहचान बनाता है। मन के विविध स्तरों और बुद्धि के विविध स्तरों की वे मीमांसा करते हैं। बुद्धि के विविध स्तरों में ही स्मृति, मति और प्रज्ञा का विवेचन होता रहा है। बीते हुए की याद दिलाने वाली बुद्धि स्मृति है, वर्तमान को परखने वाली मति है, और अनागत या जो आने वाला या घटने वाला है उसको बूझ लेने वाली बुद्धिप्रज्ञा है।³⁴ प्रज्ञा ही जब नित्य नवीन सर्जना करने लग जाए जो वह प्रतिभा कहलाती है।³⁵

कवि की चेतना शब्दों में कैसे ढलती है इसकी व्याख्या अभिनवगुप्त ने व्याकरणदर्शन में भर्तृहरि आदि आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित वाक् या वाणी के चार रूपों— परा, पश्यंती, मध्यमा तथा वैखरी के द्वारा की है। कविता की अपनी धरती पर इन को स्थापित करते हुए उन्होंने इनके प्रख्या और उपाख्या ये दो स्तर बताए हैं। चेतना के भीतर एक कौंध में किसी दृश्य, स्मृति या प्रसंग का झलक उठना प्रख्या है। उपाख्या उसकी अभिव्यक्ति है।

अभिनवगुप्त भर्तृहरि के द्वारा बताए गये वाणी के बहिर्याण के इन विविध स्तरों को शैवदर्शन की तत्त्वमीमांसा से जोड़ कर काव्यसृष्टि की व्याख्या करते हैं। तदनुसार पश्यंती इच्छाशक्ति से, मध्यमा ज्ञानशक्ति से तथा वैखरी क्रिया शक्ति से सम्बद्ध हो जाती है, जब कि परा वाक् को अभिनव कविप्रतिभा या महेश्वर से अभिन्न मानते हैं। परा-वाणी-परमशिव-कविप्रतिभा इस समीकरण को ले कर आचार्य कवि द्वारा काव्य की सृष्टि को शिव द्वारा होने वाली विश्व की सृष्टि से समाकार देखते हैं, और दोनों में प्रक्रियागत साम्य का प्रतिपादन करते हैं। शिव जिस तरह प्रकाश विमर्शमय हो कर स्वातंत्र्य से संसार की सृष्टि करते हैं, वैसे ही कवि अपनी प्रतिभा के स्वातंत्र्य से काव्य की सृष्टि करता है। जिस तरह शिव शक्ति

फ्रेंच उपन्यासकार क्लॉद सिमो को 1985 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया गया। ... व्याख्यान के पश्चात् उनसे किसी ने यह सवाल कर डाला कि एक लेखक के रूप में उनकी चुनौती और समस्या क्या है। उन्होंने कहा— लिखते समय मेरे सामने तीन ही समस्याएँ रहती हैं। पहली, वाक्य की शुरुआत कैसे करूँ, दूसरी, वाक्य को जारी कैसे रखूँ और तीसरी, वाक्य का समापन कैसे करूँ।

³⁴ द्विविधं शिष्यमाचक्षते यदुत बुद्धिमानाहार्यबुद्धिश्च। यस्य निसर्गतः शास्त्रमनुधावति बुद्धिः स बुद्धिमान्। यस्य च शास्त्राभ्यासः संस्क्रुते बुद्धिमसावाहार्यबुद्धिः। त्रिधा च सा, स्मृतिर्मतिः प्रज्ञेति। अतिक्रान्तस्यार्थस्य स्मन्त्रीस्मृतिः। वर्तमानस्य मन्त्री मतिः। अनागतस्य प्रज्ञात्री प्रज्ञेति। सा त्रिप्रकारापि कवीनामुपकर्त्री।

³⁵ 'प्रतिभा' अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा; तस्या 'विशेषो' रसावेशवैशद्यसौन्दर्य काव्यनिर्माणक्षमत्वम्।

से संवलित हो कर विश्व रचते हैं, उसी तरह रचनाकार भी प्रतिभा की शक्ति से संवलित हो कर कविता का विश्व रचता है।

काव्याभिव्यक्ति के क्रमिक सोपानों का अभिनवगुप्तसम्मत स्वरूप संक्षेप में यँ प्रदर्शित किया जा सकता है :

वाणी का प्रकार	चेतना	शब्दशक्ति	बोध	संरचनात्मक प्रक्रिया
परा	अहम्प्रत्ययविमर्श	प्रत्यवभास	प्रकाश	बीजक्षेप
↓	↓	↓	↓	↓
पश्यंती	इच्छा शक्ति	व्यंजना	प्रकाश	अंकुरण
↓	↓	↓	↓	↓
मध्यमा	ज्ञानशक्ति	लक्षणा	प्रकाश	पल्लवन
↓	↓	↓	↓	↓
वैखरी	क्रियाशक्ति	अभिधा	विमर्श	परिणति

संदर्भ

अभिनवगुप्त (1918-1938), *तंत्रालोक*, जयरथकृत विमर्शिनीसहित, सात भाग, (सं.) मधुसूदन कौल, काश्मीरसंस्कृत सीरीज, श्रीनगर.

अभिनवगुप्त (1938-41), *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी*, तीन भाग, (सं.) मधुसूदन कौल, काश्मीर संस्कृत सीरीज, श्रीनगर.

अभिनवगुप्त (1956-2014), *अभिनवभारती, नाट्यशास्त्र*, चार खण्ड, प्राच्यविद्या शोधसंस्थान, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा.

आनंदवर्धन (1982), *ध्वन्यालोक*, (सं.) के. कृष्णमूर्ति, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.

उत्पलदेव (1921), *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका*, (सं.) मधुसूदन कौल, काश्मीरसंस्कृत सीरीज, 1921, श्रीनगर.

कुंतक (1977), *वक्रोक्ति जीवित*, (सं.) के. कृष्णमूर्ति, कर्णाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़.

दण्डी (1958), *काव्यादर्श*, रामचंद्रमिश्रकृत टीका सहित, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी.

भरत (1956-2014), *नाट्यशास्त्र*, चार खण्ड, प्राच्यविद्या शोध संस्थान, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा.

भामह (1994), *काव्यालंकार*, (सं.) रमन कुमार मिश्र, विद्यानिधि प्रकाशन, नयी दिल्ली.

मम्मट (1985), *काव्यप्रकाश*, (सं.) गंगानाथ झा, पुनर्मुद्रण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी.

वामन (1953), *काव्यालंकारसूत्रवृत्ति*, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई.

शांगंदेव, *संगीतरत्नाकर*, (सं.) सी. सुब्रह्मण्य शास्त्री, कल्लिनाथ व सिंह भूपाल की टीकाओं के सहित, अड्यार लाइब्रेरी, अड्यार.

ऋग्वेद, सायणभाष्य सहित, चार खण्ड, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना.